International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-10, Issue-5 Sep - Oct – 2023 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

मुगल शासकों का हिन्दुओं के प्रति दृष्टिकोण व संयुक्त संस्कृति का विकास

Nikita Rani, M.A. History, (UGC-NET),

Assistant Professor, B.R.College Higher Education of Technology, Deoband, Maa Shakumbhari University, Saharanpur.

Mail ID:nikitapundir0861@gmail.com

1.1 प्रस्तावना

बाबर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुके बाबरी' में भारतीय मुसलमानों को हिन्दुस्तानी कहकर सम्बोधित किया है। मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद उसने प्रशासन के क्षेत्र में अधिकांश हिन्दुओं को उसी पद पर रहने दिया। चंदेरी विजय के बाद मेदिनी राय की दो राजकुमारियों की शादी मिर्जा कामरान तथा हुमायूँ से करके अपनी उदारता का परिचय दिया और अकबर की राजपूत नीति की पृष्ठभूमि तैयार की।

अपने उत्तराधिकारी हुमायूं को सुझाव देते हुए बाबर ने कहा था कि भारतवर्ष में अनेक धमानुयायी रहते है। ऐसी परिस्थिति में तुम्हारा मस्तिष्क धार्मिक भावनाओं से प्रभावित न हो। तुम सभी धर्मो के प्रति सहानुभूति रखकर अपनी सम्पूर्ण प्रजा के लिए यथोचित न्याय करना। गायों का वध न करके हिन्दुओं का सहानुभूति प्राप्त करना। मंदिरों को ध्वस्त न करके हिन्दुओं की कृतज्ञता को प्रज्ञपत करने का प्रयास करना और साम्राज्य में शांति रखना। हिन्दुओं के दमन की अपेक्षा प्रेम की तलवार से इस्लाम धर्म का प्रचार करना। शिया तथा सुन्नी के मतभेदों पर कभी ध्यान न देना क्योंकि इससे इस्लाम की शक्ति क्षीण होगी। प्रशासन तथा राजनीति को धर्म के अवगुणों से बचाना। इस प्रकार बाबर प्रथम मुगल सम्राट था, जिसने अच्छे हिन्दू–मुस्लिम संबंध का बीजारोपण किया।[1]

हुमायूँ ने आजन्म अपने पिता के सुझाावों का पालन किया तथा उसके आदर्शो का अनुकरण किया। हिन्दुओं के प्रति उसके हृदय में विशेष स्थान था। चौसा के युद्व में एक हिन्दू भिष्ती ने उसकी प्राण रक्षा की। कृतज्ञता में एक दिन के लिये सम्राट ने उसे राजगद्दी पर बिठाया। चौसा से भागते हुए गहोरा के हिन्दू राजा ने उसकी सहायत की थी। मालवा अभियान के समय मंझू के सुझाव पर उसने हिन्दुओं की हत्या बंद कर दी। राजा मालदेव ने उसे सहायता का आष्वासन दिया। अर्सकीन तथा जेम्स टाड के अनुसार हुमायूँ ने मेवाड़ की रानी कर्णवती की राखी स्वीकार कर सच्चे भाई के रूप में रानी की सहायता करने के लिए प्रस्थान किया, किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों के परिणामस्वरूप वह उचित समय पर सहायता न कर सका। अमरकोट के शासक ने उसे अपने यहां शरण दी। यहीं पर राजकुमार अकबर का जनम हुआ। इन परिस्थितियों और घटनाओं के परिणामस्वरूप उसके हृदय में हिन्दुओं के प्रति सहानुभूति थी। अतः सम्राट ने हिन्दू–मुस्लिम संबंध को अच्छा बनाने का सफल प्रयास किया।[2]

मुगल सम्राट अकबर एक उदारवादी शासक था। वह भारतवर्ष को अपने मातृभूमि तथा हिन्दू, मुस्लिम सभी को अपनी प्रजा समझकर समान रूप से सुविधा प्रदान करना चाहता था। डा0 मुहम्मद यासीन के अनुसार, अकबर का मुख्य उददेष्य मुस्लिम सम्प्रदाय को भारतीय बनाकर राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक

[1] वी0ए0 स्मिथ, अकबर द ग्रेट मुगल, दिल्ली, 1958, पृष्ट–22; एडवर्डस एण्ड गैरेट, मुगल रूल, आपसिट, पृष्ठ 226
[2] मान्सरेट, एस0 जे0, दि कमेन्ट्री ऑफ हिज टू द कोर्ट ऑफ अकबर, अनुवाद, हायलैण्ड, उद्धृत एस0एन0 बनर्जी, कटक, 1922

रंगमंच पर एकता प्रदान करना था। हिन्दू मुस्लिम असमानता को दूर करने के लिये 1564 में जजिया कर तथा 1563 में तीर्थ कर समाप्त कर दिया गया। 1562 में आगरे के शासक भारमल की राजकुमारी तथा जैसलमेर के शासक मोटा राजा उदयसिंह की पुत्री से शादी करके हिन्दू मुस्लिम संबंध की सराहनीय पृष्ठभूमि तैयार की। सम्राट अकबर ने राजकुमार सलीम का वैवाहित संबंध भगवानदास की पुत्री तथा मानसिंह की बहन से 1584 में सम्पन्न कराकर अपने उत्तराधिकारी के भी दृष्टिकोण में परिवर्तन करने का फल प्रयास किया। राजा भगवान दास, मानसिंह, टोडरमल तथा बीरबल को उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुकित करके अपनी सौहार्दता तथा उदारवादी नीति का परिचय दिया। राजपूत नीति के अन्तर्गत रणथम्भौर के राजा सुरजन हाडा को विशेष सुविधाएँ प्रदान की।[3]

उसकी सम्पूर्ण प्रजा धर्म के नाम पर अनेक वर्गो में विभक्त थी। अतः वह दीन–इलाही के माध्यम से सम्पूर्ण प्रजा को एकता के सूत्र में बॉधना चाहता था। अकबर स्वयं सूर्य तथा अग्नि की उपासना करता था। हिन्दु ओं की भांति मस्तर पर तिलक लगाता था। सम्राट अकबर रक्षाबंधन, दीवाली, दशहरा तथा होली का त्यौहरा हिन्दुओं की भांति मनाता था। बदायूंनी तथा इसाई पादरियों के अनुसार उसने गौवध तथा मांसाहार पर प्रतिबन्ध लगाकर हिन्दुओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नीति का परिचय दिया। साहित्य के क्षेत्र में उसने अथर्ववेद, कहाभारत तथा रामयण के अनुवाद फारसी में कराया। यही नहीं उसे लीलावती नामक गणित की पुस्तक का अनुवाद फारसी में कराकर हिन्दू साहित्य के प्रति सौहार्दता का परिचय दिया। वास्तुकला, चित्रकला पर तो हिन्दुओं और मुसलमानों का सहयोग स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, इस प्रकार सम्राट अकबर ने हिन्दू एवं मुसलमानों को राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में समान अधिकीर एवं सुविधाएँ प्रदान कर दोनों सम्प्रदायों के बीच आपसी सौहार्द को बढ़ाने में अग्रणी भूमिका निभाई और निष्चित रूप से वह इसमें सफल रहा।

मुगल सम्राट जहॉगीर का दृष्टिकोण हिन्दुओं के प्रति अकबर की अपेक्षा में कम उदारवादी था, लेकिन वह स्वयं रक्षाबंधन, दीवाली आदि के त्यौहरों में भाग लेता था। मेवाड़ के राण कर्णसिंह तथा अमरसिंह के साथ उसने सहानुभूतिपूर्ण नीति अपनाई। मानसिंह को प्रशासनिक एवं सैनिक पदों पर विभूषित किया। जहॉगीर ने हिन्दुओं की स्थिति को हानि पहुॅचाये बिना इस्लाम के हित में कार्य किया। उसने हिन्दुओं को तीर्थ यात्रा और नये मन्दिरों के निर्माण की अनुमति देने में अपने पिता की नीति का अनुसरण किया।[4]

शाहजहॉ का शासन कला रूढिवादिता तथा धार्मिक कट्टरवाद का समय माना जाता है। पादशाह के लेखकर के अनुसार शाहजहॉ ने अनेक हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त कराकर अपनी रूढ़िवादी धार्मिक नीति का परिचय दिया। केवल बनारस में 72 मन्दिरों को ध्वस्त कराया गया। जयसिंह तथा जसवंत सिंह को राज्य प्रशासन में स्थान देने के बावजूद भी धार्मिक कट्टरवाद का परित्याग नहीं किया। शाहजहॉ ने हिन्दुओं पर तीर्थ कर फिर से लगा दिया। इस आर्थिक बोझ के कारण बहुत से हिन्दू जो धार्मिक कार्य करना चाहते थे, उन्हे दिक्कतें आ गई। ऐसा उल्लेख मिलता है कि बनारस के एक विद्वान कविन्द्राचार्य के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल सम्राट से मिला, जिनके अनुरोध पर शाहजहां ने यह कर समाप्त कर दिया। ऐसा माना जाता है कि अपने पुत्र दारा के विचारों से प्रभावित होकर शाहजहां ने अपनी धार्मिक कट्टरवाद की नीति

[3] अकबरनामा, अनुवाद बैवरिज, जिल्द–3, कलकत्ता, 1897, पृ0 774
[4] ई0बी0 हावेल, हैन्ड बुक टू आगरा एण्ड द ताज, सिकन्दरा, फतेहपुर सीकरी एण्ड द नेबरहुड, पेज–66

का परित्याग कर दिया। दारा के प्रभाव के कारण ही 1647 ई0 के बाद बहुत से ध्वस्त हुए मन्दिरों को फिर से निर्माण करने का अधिकारी हिन्दुओ को मिला।[5]

हिन्दू मुस्लिम सम्प्रदायों को समीप लोने में राजकुमार दारा शिकोह का प्रयास अत्यन्त प्रशंसनीय है। अपने जीवन काल में उसने हिन्दू धर्म, दर्शन का अध्ययन किया। रामायण, गीता तथा उपनिषद का अनुवाद फारसी भाषा में कराया। मुहम्मद काजिम के अनुसार वह ब्राह्मणों के समाज में रहता था, योगी, साधु तथा सन्यासियों के साथ घूमता था और उन्हें अपना गुरू मानता था। वह वेद को ईष्वर का शब्द मानता था। वह अल्लाह के पवित्र नाम के स्थान पर प्रभु का स्मरण करता था। उसने अपनी अँगूठी पर हिन्दी तथा संस्कृत के शब्दों को खदुवाया था। टाइटस के अनुसार, यदि उसकी हत्या नह होती और मुगल साम्राज्य की गद्दी प्राप्त हुई होती तो इतिहास का कुछ और ही स्वरूप होता।[6]

सम्राट औरंगजेब ने हिन्दुओं के प्रति उदारनीति नहीं अपनाई। उसके पूर्ववर्ती मुगल सम्राटों की नीतियों पर हिन्दू राजकुमारियों का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। परन्तु औरंगजेग के हमर में सिर्फ दो हिन्दू रानियॉ थी और उनका प्रभाव सम्राट पर नगण्य था। औरंगजेब ने हिन्दुओं के प्रति रूढ़िवादी तथा धार्मिक कट्टरता की नीति को अपनाया। 1669 ई0 में मथुरा, बनारस, अयोध्या में अनेक हिन्दू मंदिरों को ध्वस्त कराकर उसने मस्जिदों का निर्माण कराया। मुहम्मद साकी के अनुसार उसने इस्लाम की खोई हुई प्रतिष्ठ को पुनः बढ़ाया। जोधपुर, चित्तौड़ तथा आमेर में अनेक मंदिरों को गिरवाया। अमरोहा तथा सम्भल की मस्जिरों में आज भी हिन्दू मंदिरों का अवशेष दिखाई देते है।[7]

1.2 साम्राज्य की प्रशासनिक सेवाओं में हिन्दुओं की नियुक्तिः

मुगल सम्राटों ने एक सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना के उद्देष्य से हिन्दुओं की राज्य की सेवाओं में भिन्न–भिन्न पदों पर नियुक्त किया था। हिन्दुओं की नियुक्तियों के तीन प्रमुख कारण थे–प्रथम सम्राट के सम्बन्धियों को लाभान्वित करना, द्वितीय एक विष्वसनीय सेना का गठना करना और वित्त और न्याय विभागों की आवष्यकताओं की पूर्ति करना। जो लोब सम्राट के घनिष्ठ होते थे, उन्हें ऊँचे पद दिये गये। न्याय विभाग में अधिकांशतः उलेमा की प्रधानात थी। कुछ मामलें में जहॉ मुकदमा लड़ने वाले हिन्दू होते थे, वहां न्याय विभाग में हिन्दू कानून की व्याख्या करने के लिए पण्डितों की नियुक्ति की गई। बाबर और हुमायूं के समय इस संबंध में किसी स्पष्ट नीति का विकास नहीं हुआ था, लेकिन अकबर के समय इस विषय पर गम्भीरता से विचार किया गया।[8]

अकबर ने पदोन्नति योग्यता के आधार पर की थी। इसी आधार पर भगवान दास, मानसिंह, रामसिंह और टोडरमल उच्च पदों पर पहुँचने में सफल हुए थे। अकबर की नीति को सफल बनाने के लिए टोडरमल ने अपने अधीन वित्त विभाग के कर्मचारियों को सारा हिसाब–किताब फारसी भाषा में तैयार करने का आदेश दिया था। इस प्रकार हिन्दुओं ने अपने हित में फारसी भाषा सीखी, जिससे उनकी पदोन्नति हुई। जहॉगीर ने भी राज्य की सेवाओं में हिन्दुओं की नियुक्ति की। इस संबंध में उसने अपने पिता अकबर की नीति का अनुसरण किया। हालॉकि उसके समय में हिन्दुओं की स्थिति में कुछ कमी आ गयी थी। क्योंकि मानसिंह ने जहॉगीर के विरोध में खुसरों का समर्थन मुगल सम्राट बनाने के लिये किया था। इससे जहॉगीर राजपूतों से

[5] एफ0ई0 कीय; ए हिस्ट्री ऑफ एजूकेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, कलकत्ता, 1959, पृष्ठ–128
[6] स्लीमन, रैम्बल्स एण्ड रिक्लेकशन्स, सम्पादित स्मिथ, पृ0 511–13
[7] बर्नियर, आपसिट, पृ0 229; एस0एम0 जाफर, एजूकेशन इन मुस्लिम इण्डिा, पेशावर, 1936, पृ0 97–98
[8] मनूची, स्टोरियो द मोगोर, अनुवाद, इरविन, जिल्द–2, लन्दन, 1907–08, पेज–8

नाराज हो गया था। लेकिन फिर भी उसके शासन काल में तीन हिन्दू गर्वनर के पद पर थे – बंगाल में मानसिंह, उड़ीसा में टोडरमल के पुत्र राजा कल्याण और गुजरात का गर्वनर राजा विक्रमजीत। उसके शासनकाल के तीसरे वर्ष में मोहनदास ने दीवान के पद पर काम किया। विलियम हाकिन्स के अनुसार जहॉगरी ने राजपूत सेनापतियों को नौकरी से निकाल दिया और उनके स्थान पर मुसलमानों को रखा। इसके परिणामस्वरूप उसका अधिकार दक्षिण की रियासतों पर समाप्त हो गया, जिन पर उसके पिता अकबर ने विजय प्राप्त की थी।[9]

शाहजहॉ के समय राजा टोडरमल, राय काशीराम और राय बहारमल ऊॅचे पदों पर आसी थे। 'चहार चमन' के लेखक राय चन्द्रभान दारूल इन्शा के प्रधान थे। विभागों के प्रधान प्रायः हिन्दू होते थे। दीवाने तने और दीवान बयूतात के प्रधान राय मुकन्ददास थे। दक्षिण में राय दयानत राम और लाहौर में सोभाचन्द दीवान थे। शाहजहॉ के समय में जयसिंह और जसवन्त सिंह प्रमुख अमीर थे और प्रान्तीय गर्वनरों के पद पर काम कर रहे थे। मुसलमान और राजपूत केवन सेना में ही कार्य करने में रूचि दिखलाते थे, ऐसी परिस्थिति में प्रायः अन्य हिन्दुओं ने दूसरे विभागीय रिक्त स्थानों पर कार्य करना शुरू किया। शाहजहॉ के समय में 241 मनसबदारों में जिनका दर्जा एक हजार और उससे अधिक था, 51 मनसबदार हिन्दू थे। शाहजहॉ के समय में सबसे महत्वपूर्ण नियुक्ति शाहजी भोंसले की थी, जिसको छः हजार का मनसब दिया गया था। उनका मनसब सभी हिन्दू मनसबदारों से अधिक था। उत्तराधिकार के संघर्ष के समय जसवन्त सिंह साम्राज्य के सबसे प्रमुख अमीर थे। उनको 6 हजार का मनसब मिला हुआ था। जिस समय औरंगजेब दक्षिण का वासयराय था, शाहजहॉ ने उसकी राजपूत विरोधी नीति की आलोचना की। औरंगजेब ने राय मायादास के स्थान पर एक मुस्लिम की नियुक्ति की थी।[10]

औरंगजेब के शासन के प्रारम्भ में जसवन्त सिंह और जयसिंह प्रमुख अमीर थे। ऐसा माना जाता था कि औरंगजेब की मृत्यु के समय हिन्दू मनसबदारों की संख्या 50 थी। औरंगजेब के अन्तिम समय में पूरे साम्राज्य में कोई हिन्दू गर्वनर के पर पर नहीं था और हिन्दू दीवान रजा रघुनाथ का स्थान ग्रहण करने के लिये कोई हिन्दू उस समय नहीं था। कुछ प्रमाण मिलते हैं, जिससे पता चलता है कि औरंगजेब ने हिन्दुओं को सरकारी पद पर रखने पर रोक लगा दी थी। 'मिसिरे आलमगीरी' के अनुसार औरंगजेब ने एक आदेश के अन्तर्गत वित्त विभाग में हिन्दुओं की नियुक्ति की मनाही कर दी थी। कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने औरंगजेब के इस कार्य का समर्थन किया है। उनके अनुसार हिन्दू कर्मचारियों को चोरी, रिष्वत और भ्रष्टाचार के कारण वित्त विभाग से निकाला गया। हिन्दुओं के अभाव में सरकारी कार्य में गतिरोध उत्पन्न हो जाने के कारण उसने अपने इस आदेश में संशोधन कर दिया और कहा कि वित्त विभाग में पचास प्रतिशत हिन्दू और पचार प्रतिशत मुसलमान होने चाहिये। उसने हिन्दू सैनिक अधिकारियों को अपनी व्यक्तिगत सेवा में नहीं रखा। लेकिन सम्पूर्ण मुगलकाल में सेना में हिन्दुओं की उपस्थित लगातार बनी रही। बर्नियर ने लिखा है कि राजपूत वीर और स्वामिभक्त होते थे। युद्व स्थल से भागने की अपेक्षा वे अपने प्राणों की आहुति देना श्रेयस्कर समझते थे। यही कारण था कि मुगल सम्राटों ने राजपूतों को अपने सेना में बनाये रखा। राजपूतों का उपयोग विद्रोही राजपूत राजाओं के विरूद्व किया जाता था। इसके अतिरिक्त उन्हें पठानों और विद्रोही मुगल अमीरों के विरूद्व तथा दक्षिण भारत के युद्वों में लड़ने के लिय भेजा गया।[11]

[9] ए0 रशीद, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इंडिया, कलकत्ता, 1969, पृ0 150
[10] आइने अकबरी, ब्लाकमेन, आपसिट, पृ0 278; एस0एम0 जाफर, एजूकेशन, आपसिट, पृ0 86
[11] एस0एम0 जाफर, एजुकेशन आपसिट, पृ0–20, कल्चरल एस्पेक्टस, आपसिट, पृ0 78

1.3 स्त्रियों की दशा

इस्लाम के आगमन के साथ हिन्दू समाज में परिवर्तन होने प्रारम्भ हो गये। पहला परिवर्तन हम पर्दा प्रथा के विकास के रूप में देखते हैं। पर्दा शब्द का तात्पर्य है ओट के लिये कोई वस्त्र, साधारणतः इसका तात्पर्य घूँघट से होता है। स्त्री के लिये इसका प्रयोग किए जाने पर यह स्त्री को अलग कक्ष में, या भवने से पृथक हिस्से में रखा जाना प्रकट करता है। पर्दा के उद्भव के सम्बन्ध में अनेक विरोधाभास पूर्ण सिद्वान्त रखे जाते है। कुछ विद्वानों का कथन है कि इस प्रथा के उत्थान के लिए मुसलमान उत्तरदायी है। दूसरी तरफ कुछ विद्वान इतिहासकार यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है कि पर्दे की प्रथा हिन्दू समाज में मुसलमानों के भारत में राज्य स्थापित करने के बाद आई। इन विद्वानों के अनुसार घूँघट की प्रथा अति प्राचीन है और इस सिद्वान्त का समर्थन प्राचीन हिन्दू सामाजिक इतिहास के कई उदाहरण देकर किया गया है। वस्तुतः मुस्लिम आक्रमणकारियों के भारत में प्रवेश से पूर्व स्त्रियों में पर्दा प्रथा कुछ अंशों में विद्यमान तो थी लेकिन इस तरह प्रचलित नहीं थी। प्राचीन भारत में स्त्रियों को थोड़ा–बहुत अलग रखा जाता था और स्त्रियां घूँघट का पालन करती थी, किंतु पर्दे का वर्तमान विस्तृत और संस्थागत रूप मुस्लिम शासन के समय प्रारम्भ होता है। पर्दा का एक प्रथा के रूप में प्रचलन और उसके वर्तमान स्वरूप के विकास में अनेक तत्वों का योगदान था, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण हिन्दू समाज में स्त्री की स्थिति, उसकी प्रतिषठा एवं पवित्रता को सुरक्षित रखने सम्बन्धी विचारधारा थी। इसक एक व्यवहारिक कारण असुरक्षा की भावना थी, जो विशेषकर मंगोलों के आक्रमण के कारण बनी रही।

हिन्दू स्त्रियों में प्रचलित पर्दा प्रथा मुस्लिम स्त्रियों की तरह कठोर नहीं थी। उच्च वर्ग की हिन्दू स्त्रियॉ बहुधा अपने घरों के अन्दर ही रहती थी, परन्तु सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों में वह घर के अन्दर एवं बाहर दोनों जगहों पर प्रत्यक्ष रूप से भाग लेती थी। राजस्थान के राजपूत घरानों में पर्दा प्रथा का अपेक्षाकृत कम प्रचलन था। क्योंकि वहॉ पर स्त्रियां युद्व कला में निपुण होती थी तथा वे शिकार एवं अन्य साहसिक कार्यो में प्रायः भाग लेती रहती थी। इसी प्रकार दक्षिण भारत में विशेष रूप से मालाबार क्षेत्र में कुछ संभ्रांत मुस्लिम परिवारो को छोड़कर पर्दा प्रथा नही थी। हिन्दू समकाज में पर्दा स्त्रियों की उच्च प्रतिष्ठा का द्योतक था। उच्च हिन्दू परिवारों के बीच पर्दा प्रथा के प्रचलन का एक अन्य कारण उनके द्वारा शासक वर्ग के आचार–व्यवहार की नकल करने की प्रवृत्ति थी। इस प्रकार पर्दा प्रथा उच्च वर्ग के बीच सम्मान सूचक प्रथा के रूप में प्रचलित हो गई। राजघरानों की स्त्रियॉ घर से बाहर कम ही निकलती थी और वे जब भी बाहर निकलती तो चारों ओर से पर्दो से ढकी तथा नौकरों एवं हिजड़ों से घिरी हुयी पालकी में बैठकर चलती थी। उच्च वर्ग की महिलाएँ वही तक पर्दा का पालन करती थी, जहॉ तक उनके साधन उन्हें अनुमति देते थे, क्योंकि उस वर्ग की स्त्रियां घरेलू कामकाज से दूर रह सकती थी। साधारण वर्ग की हिन्दू स्त्रियां सामान्यतः आवष्यक कार्यो के लिए घर से बाहर निकलती थी एवं पुरूष स्त्रियों की उचित स्वतन्त्रता में बाधक नहीं बनते थे। मुस्लिम स्त्रियों के विपरीत वे अपने को सिर से पैर तक ढक कर नहीं रखती थी, एक कपड़े का टुकड़ा या दुपट्टा जिससे सिर ढका जाता था। पर्याप्त माना जाता था।[12]

इस काल में हिन्दू और मुस्लिम दोनों समुदायों में ही विवाह एक प्रमुख सामाजिक उत्सव था। घरेलू जीवन की इस महत्वपूण्र उत्सव का स्तर एवं उपयुक्त वर की योग्यता का मापदण्ड वधू पक्ष के माता–पिता की आर्थिक स्थिति होती थी। सामान्यतः हिन्दू विवाह में वधू पक्ष क्षरा सबसे पहले वर को पसन्द किया जाता था। विवाह की बातचीत में एक ऐसी स्थिति आ जाती थी, जब दोनों पक्ष विवाह के लिये सहमत हो जाते

[12] ट्रवेर्नियर, ट्रेवल्स इन इण्डिया, अनुवाद, वी0 बाल, लंदन, 1899, पृ0 234–35

थे। इस समझौता उचित उत्सव द्वारा मनाया जाता था। इस तिलक या मंगनी कहा जाता था। इसके पश्चात् विवाह की तिथि (लग्न) निष्चित की जाती और विस्तृत तैयारियॉ प्रारम्भ हो जाती। विवाह के दिन वधू के घर के आंगन में एक मण्डप निर्मित किया जाता, जिसे फूलों एवं आम की पत्तियों से सजाया जाता था। इस अवसर पर पास–पड़ोस एवं क्षेत्र के परिचित एवं रिष्तेदार इकट्ठे होते एवं उपस्थित समस्त महिलायें वधू के घर पर विवाह–गीत गाने लगती। दूसरी तरफ आवष्यक तैयारियां पूरी हो जाने पर वर आनंदमग्न बारात के साथ वधू के घर के लिए प्रस्थान करता। बारात आगमन के पश्चात् वधू के द्वारा पर पूजा की जाती थी। पूर्व–निष्चित समय पर वर एवं वधू मण्डप में बैठ जाते। वधू के पिता वर को अपनी पुत्री के औपचारिक समर्पण की क्रिया, जिसे 'कन्यादान' कहते है, करता था। एक स्त्री वर और वधू के वस्त्रों के छोरों को गांठ लगार बॉध देती, जिसका आशय दोनों का शाष्वत मिलन होता था। इसके पश्चात् पवित्र अग्नि के चारों तरफ 'सप्तपदी' प्रदक्षिणा की क्रिया होती, पुरोहित द्वारा मंत्रोच्चार के साथ विवाह संस्कार पूरा होता।

हिन्दू समाज में कुछ शासक वर्ग के लोगों एवं कुछ धनी व्यक्तियों को अपवाद स्वरूप छोड़कर अधिकांश लोग एक ही विवाह करते थे। डेला बैले के अनुसार ''हिन्दू समाज का पुरूष वर्ग एक स्त्री से ही विवाह करता था और सम्बन्ध–विच्छेद की स्थिति तभी आती थी, ज बवह स्त्री सन्तान पैदा करने मं असक्षम होती थी।'' लड़कियों के विवाह में दहेज देने की प्रथा थी, जिसके अंतर्गत माता–पिता अपनी सामर्थ के अनुसार गहने, कुर्सी–मेज, हाथी, घोड़े, विलास की वस्तु ओर नौकरानियॉ अपनी लड़कियों को देते थे। यह प्रथा धनी वर्ग के लोगों में अधिक थी। ऐसा माना जाता है कि ब्राह्माण वर्ग में दहेज प्रथा नहीं थी। विदेशी यात्रियों ने भी इसका उल्लेख किया है। साधारणतया वर पक्ष के लोग कन्या पक्ष से दहेज लेते थे। लेकिन कभी–कभी कन्या पक्ष के लोग भी वर पक्ष से दहेज प्राप्त करते थे। यह प्रथा निर्धन वर्ग में अधिक प्रचलित थी। वे धनी लोग जो कम उम्र की कन्या से विवाह करना चाहते थे, कन्या पक्ष को दहेज देते थे।[13]

इस काल में बाल विवाह की प्रथा प्रचलित थी। डा0 रेखा मिश्रा के अनुसार हिन्दू समाज में बाल विवाह मुगल काल की एक विशेषता थी। लड़कियों का विवार 9 या 10 वर्ष में कर दिया जाता था। जनसाधारण वर्ग के लोग अपनी सन्तानों को पढ़ाने के बजाय बालकों को कृषि कार्य एवं अन्य पारिवारिक कुटीर उद्योगों में लगाना एवं बालिकाओं को घरेलू कार्यो में दक्ष बनाना अधिक पसन्द करते थे। समाज के सभी वर्गो के लोग कम उम्र में ही अपनी बालिकाओं के विवाह हेतु प्रयास करने लगते थे। तत्कालीन सामाजिक परम्परा के अनुसार 10 वर्ष की आयु के बाद बालिकाओं का अविवाहित रहना सामाजिक दृष्टिकोण से अनुचित समझाा जाता था। उदाहरण स्वरूप – पेशवा राज्य का एक ब्राह्माण सैनिक अधिकारी स्वयं कहता है कि वह इस कारण अधिक चिन्तित है कि उसकी पुत्री की आयु 9 वर्ष हो चुकी है और उसका विवाह अभी तय नहीं हो पाया है। अगर वह अगले वर्ष तक अपनी पुत्री का विवाह तय नहीं कर पाया तो उसकी आयु 10 वर्ष की हो जायेगी और तब उसकी पुत्री के बारे में लोग अप्रिय बाते कहने लगेंगें। मुकुन्दराम के अनुसार, एक पिता जो अपनी पुत्री की शादी उसके नवे वर्ष में कर देता था, सौभाग्यशाली समझा जाता था तथा यह माना जाता था कि उस पर ईष्वर की कृपा दृष्टि है।[14]

इस बाल विवाह प्रथा में वर या वधू ढूंढने, विवाह निष्चित करना एवं विवाह से सम्बन्धित रिवाजों एवं परम्पराओं का निर्वाह करना माता–पिता एवं करीबी रिष्तेदारों का उत्तरदायित्व होता था। उस समय बालक या बालिका जिनका विवाह होना था, वे इन सारी घटनाओं से अनभिज्ञ ही रहते थे। इतनी कम उम्र में शादी

[13] एफ0ई0 कीय, आपसिट, पृष्ठ 116; एस0 एम0 जाफर, एजूकेशन, आपसिट पृ0 134
[14] पी0एल0 रावत, आपसिट, पृ0 112

हो जाने की वजह से वर और वधू दोनों को अपनी पसन्द के साथी के विषय में विचार करने का मौका ही नहीं मिल पाता था। विवाह से कुछ दिन पूर्व से ही बालिका वधू पर घर से बाहर निकलने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता था। सम्राट अकबर ने बाल विवाह प्रथा में हस्तक्षेप किया। उसने लड़को के लिए 16 वर्ष और लड़कियों कि लिए 14 वर्ष विवाह की न्यूनतम आयु निष्चित की। लेकिन उसके नियमों का कहां तकब पालन किया गया यह कहना मुष्किल है। इस काल में लोग अधिक धन मिलने की लालसा में असमान विवाह भी करते थे। कुछ आर्थिक रूप से कमजोर लोग अपने बालकों का विवाह अधिक दहेज के लालच में ऐसी स्त्रियों से भी कर देते थे, जिसकी उम्र उस बालक की उम्र से अधिक होती थी। जब इस बुराई प्रचलन अधिक बढ़ गया तो अकबर ने इस संदर्भ में एक आदेश पारित किया कि ''यदि किसी स्त्री की उम्र उसके पति से 12 वर्ष अधिक हुई तो उस विवाह को गैर–कानूनी माना जायेगा।'' [15]

इस काल में स्त्रियों को विवाह के पश्चात् पति और सास–ससुर की सेवा करना प्रमुख कर्त्तव्य था। अपने इस कर्त्तव्य का पालन नहीं करने वाली स्त्रियों के साघ अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता था। साधारणतया स्त्री को अपने ससुराल में सारे घरेलू कार्य करने पड़ते थे, इसके अलावा घरेलू पशुओं की सेवा और कृषि कार्य में सहयोग भी करना पड़ता था। घर के रख–रखाव में उसकी काफी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। सास की मृत्यु या घर में अनुपस्थित रहने पर वह घर की मालकिन के रूप में स्थापित हो जाती थी। वह घरेलू खर्चो का हिसाब रखने व घर के खर्च पर नियन्त्रण रखने का भी प्रयास करती थी। आवष्यक वस्तुओं की मात्रा की जानकारी रखना एवं अतिथियों (विशेषकर महिलाओ) का स्वागत करना आदि भी उसका कर्त्तव्य था। उसे अपने पति को एक समर्पित पत्नी के रूप में प्रस्तुत करना होता था, जोकि अपने पति के भोजन करने से पूर्व भोजन ग्रहण नहीं करती थी। धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों एवं त्यौहारों पर उसकी व्यस्तता बढ़ जाती थी। पति के साथ पत्नी के सम्बन्ध काफी सम्मानजनक होते थे। जहॉगीर ने तुजुक–ए–जहॉगीरी में लिखा है कि ''हिन्दुओं में यह कहावत प्रचलित है कि अपने सामाजिक जीवन में पुरूष्ज्ञ बिना स्त्री के सहयोग के कुछ भी बेहतर नहीं कर सकता। वे स्त्रियों को अपनी अर्धागिनी मानते थे। दोनों ही एक दूसरे के विचारों का सम्मान करते थे। उच्च एवं सम्मानिक घरानों की स्त्रियां मुख्य रूप से राजपूतानियां अपने आत्म सम्मान से कभी भी समझौता नही करते थी। कर्नल टाड लिखते है कि ''अकबर के राजा जयसिंह ने एक बार अपनी पत्नी जोकि हडौती की राजकुमारी थी, का यह मजाक उड़ाया कि उनके वस्त्र अत्यधिक साधारण है तथा उनकी राजधानी की लड़कियों के वस्त्र भी उनसे बेहतर होते है। इस बात से चिढ़कर राजकुमारी ने कहा कि ''आपसी सम्मान सिर्फ खुशियों के लिये ही नहीं होता। बल्कि कई नैतिक मूल्यों को भी जन्म देता है। यदि भविष्य में कभी उसका अपमाना किया गया तो राजुकमार पायेंगे कि कोटा की पुत्री तलवार का प्रयोग भी प्रभावित ढंग से कर लेती है। राजकुमारी के उपर्युक्त शब्द उच्च राजपूत परिवारों की स्त्री पुरूष सम्बन्धो पर स्पष्ट प्रकाश डालते है। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश हिन्दू सफल दाम्पत्य जीवन व्यतीत करते थे। औरतें भावनात्मक रूप से पति का आदर करती थी तथा उनके पति उन्हें खुशियां एवं संरक्षण प्रदान करते थे। गर्भवती होने पर उस स्त्री के प्रति पारिवारिक लोगों का विशेष रूप से स्त्रियों का प्रेम सहज रूप से बढ़ जाता था। बार्टो लोमियो कहता है कि गर्भवती स्त्री को न केवल उसके पति एवं ससुराल वालो से, बल्कि पास–पड़ोस के लोगों से भी प्रेमत एवं सम्मान का भाव मिलता था, क्योंकि गर्भधारण को लक्ष्मी का वरदान माना जाता था।[16]

[15] विद्याभूषण, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लाजिक, पृ0 461 एवं 486
[16] बादशहनामा, जिल्द–1, पृ0 268–69

हिन्दू स्त्रियों के प्रति जो व्यवहार उसके पति या उसके अन्य पारिवारिक लोगों द्वारा विवाह उपरान्त किया जाता था, वह उन स्त्रियों के जीवन शैली का एक अंग बन गया था और स्त्रियां इसे सहज रूप में स्वीकार कर चुकी थी। हिन्दू पुरूष बिना अपनी पत्नी के सहयोग के धार्मिक एवं सामाजिक क्रियाओं को कार्यान्वित नहीं कर सकते थे। इस कारण पत्नी की आवष्यकता उसके लिए और उसके परिवार के लिए बढ़ जाती थी। हिन्दुओं में परिवार में पत्नी की उपयोगिता एवं महत्व का उल्लेख जहांगीर ने अपनी आतमकथा में किया है। हिन्दुओं में सामान्यतः एक पत्नी रखने की प्रथा आदि अनेक ऐसे कारण थे, जिसके फलस्वरूप सामान्य हिन्दू स्त्री का वैवाहिक जीवन सामान्य मुस्लिम स्त्री के वैवाहिक जीवन से अधिक सफल था।

हिन्दुओं में पति की असामयिक मृत्यु के पश्चात् पत्नी को दूसरा विवाह करने की अनुमति नहीं थी। यद्यपि हिन्दुओं में निम्न वर्ग के कुछ लोगों में विधवा विवाह का प्रचलन था। इन निम्नवर्गीय लोगों का एक अलग सामाजिक जीवन होता था, 'अछूत' कहे जाने वाले ये लागे नगर या सामान्य आबादी से दूर एक छोटी बस्ती के रूप में होता था। इन उपरोक्त निम्न जाति के लोगों को छोड़कर, सम्पूर्ण हिन्दू समाज में विधवा पुनर्विवाह न के बराबर था। हिन्दू स्त्रियॉ अपने पति की मृत्यु के पश्चात् भी उनके प्रति भावनात्मक लगाव रखती थी। हिन्दू समाज में विशेष रूप से राजपूत स्त्रियों में सती प्रथा प्रचलित थी। इसका एक कारण यह भी था कि समाज में विधवा हिन्दू स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखा जाता था एवं सामाजिक एवं धार्मिक कार्यो में उनकी उपस्थिति को शुभ नहीं माना जाता था। ऐसी स्त्रियां न अच्छे वस्त्र पहन सकती थी, न ही आभूषण पहन सकती थी और उन्हें लम्बे बाल रखने की अनुमति भी नहीं थी। ऐसी स्त्रियों क्ष्ै उनके परिवार के लोग भी अच्छी दृष्टि से नही देखते थे। विधवा स्त्री से निम्न स्तर के घरेलू कार्य करवाये जाते थे। ये सारी विषम परिस्थितियॉ विधवा हिन्दू स्त्री को सती होने के लिए बाध्य करती थी। इस सन्दर्भ में विधवा स्त्री के परिवार के लोग भी कम दोषपूर्ण नहीं होते थे।[17]

एक पुत्री, पत्नी एवं विधवा के रूप में स्त्री की समाज में चाहे जैसी भी स्थिति रही हो, उसे एक मॉ के रूप में समाज में निष्चित रूप से सम्मानित स्थान प्राप्त था। वह माँ के रूप में अपनी सन्तान के सबसे अधिक निकट होती थी और बालक के भविष्य निर्माण एवं समाज के लिये उपयोगी बनाने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। राजपूत अपनी माता का बहुत सम्मान करते थे और उनके समाज में माता का स्थान ऊॅचा था। माता के रूप में राजपूत स्त्रियां अपनी संतान के आरम्भ। से ही वीरता के भाव पैदा करती थी। युद्व के मैदान के लिये राजपूतों में उनकी माता द्वारा यह भावना भर दी जाती थी किवे अपनी मॉ के दूध का कर्ज अदा करें। मेवाड़ के राजा राणा संग्राम सिंह द्वितीय प्रत्येक सुबह भोजन ग्रहण करने से पूर्व अपनी मॉ को प्रणाम अवष्यक करते थे। राजपूत अपनी माता की आज्ञा पालन किसी भी कीमत पर करते थे। अपनी माता के आदेश पर सोलह वर्षीय पत्ता अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रति मोह त्याग कर चित्तौड़ पर अकबर की सेना के आक्रमण के समय केसरिया वस्त्र पहनकर युद्व के मैदान में जा पहुंचा। युद्व में बहादुरी से लड़ते हुए अपीन जान दे दी और उसकी पत्नी ने जौहर प्रथा का पालन किया। मातृभक्ति के ऐसे अनेक उदाहरण तत्कालीन राजस्थान के इतिहास में मिलते है।

मुस्लिम समुदाय में भी माता को अत्यन्त सम्मानित स्थान प्राप्त था। शासक से लेकर निम्न सबके तक के लोग माता और अन्य बुजुर्ग स्त्रियों का सम्मान करते हुए, उनके आदेशों का पालन करते थे। समकालीन इतिहासकारों ने मुगल शासको द्वारा अपनी माता के प्रति आदर व्यक्त करने के बारे में विस्तृत विवरण दिया है। मुगल शासक अपनी मॉ के सम्मुख उपस्थित होने पर सम्मान के प्रतीक के रूप में कुर्निश, सिजदा तथा

[17] एस0एम0 जाफर, सम कल्चरल ऐस्पेक्टस ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, दिल्ली, 1972, पेज 76

तस्लीम करते थे। जहॉगीर लिखता है कि जब मैं अपनी माता के दर्श के लिए धार (लाहौर के निकट) गया तो आज्ञाकारी पुत्र के रूप में उसके सम्मुख कुर्निश, सिजदा और तस्लीम की पद्वति अपनाई। बाबर भी इसी प्रकार से अपनी सौतेली दादी मॉ का आदर देता था। मुगल सम्राट अपने जन्मदिन पर राजकुमारों एवं अमीरों के साथ अपनी मॉ का आर्शीवाद लेने अवष्य जाते थे। मुगल काल में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है, जब माता के रूप में स्त्रियों ने मध्यस्थता कर सफलतापूर्वक आपसी झगड़ों का निपटारा किया। इतिहासकार बदायुॅनी और मुकरराखान के बीच हुए विवाद को मुकरराखान की माता ने सफलतापूर्वक सुलझाया था। इसी प्रकार जब जहॉगीर ने अकबर के विरूद्व विद्रोह कर दिया था तो सलोमा बेगम के प्रयासों के फलस्वरूप ही अकबर ने उसे क्षमा किया था। सम्राट शाहजहॉ औरंगजेब की राज्यविरोधी गतिविधियों के कारण उससे नाराज था और उसे दण्ड देने की सोच रहा था, परन्तु अपनी पुत्री जहॉआरा की मध्यस्थत के कारण उसे क्षमा कर दिया।

पति की मृत्यु के पश्चात् कुछ परिस्थितियों में हिन्दू पत्नी के आग में जलने की क्रिया को सती प्रथा कहा जाता था और जो स्त्री जलती थी, उसे सती कहा जाता था। प्राचीन काल में स्वेच्छा से सती होने के उदाहरण हमें मिलते है, जिनमें सर्वप्रथम लिखित अभिलेख 510 ई0 का ऐरण (म0प्र0) अभिलेख उल्लेखनीय है। लेकिन बाद में विधवाओं को उनकी इच्छा के विरूद्व भी सती होने के लिए विवश यिा जाता था। साधारणतः यह प्रथा हिन्दू समाज के उच्च वर्ग तक सीमित थी और राजपूतों की वीर जातियां इसका विशेष समर्थन करती थी। अधिकतर ब्राह्राण, क्षत्रिय और वैयर परिवार की स्त्रियॉ सती होती थी। मुगल काल में सती प्रथा का खूब प्रचलन था, यद्यपि मुगलों ने इसे रोकने का प्रयास भी किया। तत्कालीन समय में निम्न वर्ग के कुछ लोगों का छोड़कर हिन्दू विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नही थी। विधवा को अपनी पति के मृत शरीर के साथ जलना पड़ता था। ऐसा न करने पर उसे अपमानजनक और मुष्किलों से भरा हुआ जीवन व्यतीत करना पड़ता था। समाज ऐसी विधवाओं को घृणा की दृष्टि से देखता था, जो सती होने से इन्कार करती थी। वे अच्छे वस्त्र एवं आभूषण नही पहन सकती थी तथा उन्हें लम्बे बाल रखने की भी अनुमति नही थी। अबुल फजल ने लिखा है कि लोगों में यह धारणा थी कि दूसरे संसार में पित की आत्मा को एक स्त्री की आवष्यकता होती है।

सती होने वाली स्त्री के शव के साथ और पति के शव के बिना दोनों प्रकार से जलाई जाती थी। यदि मृत पति का शव उपलब्ध होता तो पत्नी उसके साथ जला दी जाती। इसे 'सहमरण' कहा जाता। यदि पति की मृत्यु पत्नी से दूर होती या कुछ वजह से जैसे पत्नी गर्भवती होती, वह बाद में किसी ऐसी वस्तु के साथ जो उसके पति प्रतीक होती जलाई जाती। इसे 'अनुकरण' कहा जाता। यदि एक से अधिक पत्नियॉ हो तो पति की सबसे प्रिय पत्नी को शव के साथ एक चिता में और दूसरी अन्य पत्नियॉ अलग–अलग दूसरी चिताओं में जल जाती थी। कभी–कभी ऐसे अवसर भी आते जब सभी पत्नियां आपसी कटुता और वैमनस्य को भुला कर अपने मृत पति के साथ एक ही चिता में जल जाती थी। चित्तौड़ के राजा रत्नसेन की दो पत्नियों की कथा उल्लेखनीय है, जिसमें वे दोनों बलिदान की अन्तिम क्रिया में जीवनपर्यन्त की अपनी आपसी कटुता और झगड़े को भूल गई। दोनों पति के शव के एक साथ चिता में जली थी।

1.4 निष्कर्ष

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में हमारे पास सती होने का एक सजीव एवं पूर्ण वर्णन उपलब्ध है, जो कि प्रसिद्व मुस्लिम यात्री इबनबतूता की उपस्थिति में हुआ। उसके अनुसार अपने पति की मृत्यु का समाचार सुनकर सती ने स्नान किया और अपने सर्वोत्त वस्त्र और अलंकार धारण किए। उसे शमशान भूमि तक

पहुंचाने के लिए शीघ्र ही एक जुलूस तैयार हो गया। ब्राह्माण और अन्य सम्बन्धी जुलूस में सम्मिलित हो गये और उन्होंने विधवा के महान सौभाग्य के लिये शुभकामनाओं की वर्षा की। वह स्त्री अपने दाहिने हाथ में एक नारियल और बाएं हाथ में एक दर्पण लेकर घोड़े पर सवार हो गयी। संगीत ओर बाजों के साथ जुलूस ने छायादार उपवन की ओर प्रस्थान किया। इस उपवन में एक तालाब था और एक पत्थर की सम्भवतः शिवमूर्ति थी। तालाब के निकट एक विशाल चिता थी, जिस पर लगातार तिल का तेल डाला जा रहा था और जनसाधारण की दृष्टि से बचाने के लिये उसे घेरकर ओट में कर दिया गया था। वहां पहुंचकर सती होने वाली स्त्री ने पहले इस तालाब में स्नान किया और तब एक–एक करके वह अपने सुन्दर वस्त्रों और अलंकारो को दान करने लगी। अन्त में उसने एक बिना सिला मोटा वस्त्र पहन लिया। फिर साहस के साथ वह घिरे हुये स्थान की ओर बढ़ी, जो अभी तक उसकी दृष्टि की ओर में था, उसने अग्नि देवता की प्रार्थना करने के लिए हाथ जोड़कर प्रणाम किया, कुछ क्षण तक वह ध्यान मग्न रहीं, फिर अचानक दृढ़ निष्चय के साथ उसने स्वयं को लपटों में झोंक दिया। ठीक इसी क्षण, दूसरी ओर तुरही ढोलों और अन्य बाजों से कोलाहल किया गया, जो स्पष्टतः दृष्य की वीभत्ससा से लोगों का ध्यान बंटाने के लिए किया गया था। अन्य लोगों ने, जो सती की क्रियाओं को ध्यान से देख रहे थे, जलती हुइ स्त्री के शरीर पर तुरन्त लकड़ी के भारी कुन्दे डाल दिए, जिससे वह बच न सके। इबनबतुता यह दृष्य देखकर बेहोश हो गया। इस कारण उसका वर्ण में इससे आगे की जानकारी नही मिलती। यह सती प्रथा का लगभग पूर्ण एवं संजीव वर्णन है।

मुगल काल में जौहर प्रथा की एक सामाजिक बुराई के रूप में विद्यमान थी। जौहर प्रथा प्रायः राजपूतों तक ही सीमित थी, यद्यपि अन्य उदाहरण भी मिलते है। जब राजपूत सरदार एवं सैनिक युद्व पराजित होने लगते तो वे अपने परिवार की स्त्रियों एवं बच्चों को किसी भवन में बन्द करके उसमें आग लगवा देते थे। इसके पश्चात् राजपूत युद्य के मैदान में शत्रु पर भीषण प्रहार करते हुये अपने प्राणों की आहुति दे देते थे। दूसरे रूप में, राजपूतों की पराजय का समाचार सुनकर शत्रु सेना के राजमहल एवं रानिवासों में प्रवेश करने से पहले ही राजपूत स्त्रियां पहले से ही तैयार विशाल आग के घेरे में पहुॅचकर सामूहिक रूप से आत्मदाह कर लेती थी। इसे ही जौहर कहा जाता था। मुगल काल में जौहर के अनेक दृष्टान्त मिलते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- वी0ए0 स्मिथ, अकबर द ग्रेट मुगल, दिल्ली, 1958, पृष्ट–22; एडवर्डस एण्ड गैरेट, मुगल रूल, आपसिट, पृष्ठ 226
- मान्सरेट, एस0 जे0, दि कमेन्ट्री ऑफ हिज टू द कोर्ट ऑफ अकबर, अनुवाद, हायलैण्ड, उद्धृत एस0एन0 बनर्जी, कटक, 1922
- अकबरनामा, अनुवाद बैवरिज, जिल्द–3, कलकत्ता, 1897, पृ0 774
- ई0बी0 हावेल, हैन्ड बुक टू आगरा एण्ड द ताज, सिकन्दरा, फतेहपुर सीकरी एण्ड द नेबरहुड, पेज–66
- एफ0ई0 कीय; ए हिस्ट्री ऑफ एजूकेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, कलकत्ता, 1959, पृष्ठ–128
- स्लीमन, रैम्बल्स एण्ड रिक्लेकशन्स, सम्पादित स्मिथ, पृ0 511–13
- बर्नियर, आपसिट, पृ0 229; एस0एम0 जाफर, एजूकेशन इन मुस्लिम इण्डिा, पेशावर, 1936, पृ0 97–98
- पी0एल0 रावत, आपसिट, पृ0 90; एफ0ई0 कीय, आपसिट, पृ0 125
- मनूची, स्टोरियो द मोगोर, अनुवाद, इरविन, जिल्द–2, लन्दन, 1907–08, पेज–8
- ए0 रशीद, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इंडिया, कलकत्ता, 1969, पृ0 150
- आइने अकबरी, ब्लाकमेन, आपसिट, पृ0 278; एस0एम0 जाफर, एजूकेशन, आपसिट, पृ0 86
- एस0एम0 जाफर, एजुकेशन आपसिट, पृ0–20, कल्चरल एस्पेक्टस, आपसिट, पृ0 78
- ए0 एल0 श्रीवास्तव, मेडिवल इण्डियन कल्चर, आगरा, 1964, पृ0 117
- ट्रवेर्नियर, ट्रेवल्स इन इण्डिया, अनुवाद, वी0 बाल, लंदन, 1899, पृ0 234–35
- एफ0ई0 कीय, आपसिट, पृष्ठ 116; एस0 एम0 जाफर, एजूकेशन, आपसिट पृ0 134.